ISSN Print: 2664-7699
ISSN Online: 2664-7702
Impact Factor: RJIF 8.53
IJHA 2025; 7(2): 170-173
www.humanitiesjournals.net
Received: 15-05-2024
Accepted: 20-06-2024

डॉ. गरिमा शर्मा
वैश्विक अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. गरिमा शर्मा
वैश्विक अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भारत में राज्य राजनीति का परिवर्तित स्वरूप: एक विश्लेषणात्मक अवलोकन

डॉ. गरिमा शर्मा

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26647699.2025.v7.i2c.208

सारांश
भारतीय राजनीति के अंतर्गत मुख्यतः राष्ट्रीय स्तरीय राजनीति को ही चुनावी राजनीति का सार मानने वाले शोधकर्ताओं के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह राज्य स्तरीय राजनीति की ओर भी अपना ध्यान आकर्षित करें। प्रत्येक राज्य की अपनी एक विशेष राजनीतिक यात्रा रही है तथा इस विभिन्नता एवं व्यापकता की जटिलता के कारण ही शोधकर्ताओं द्वारा सदैव राष्ट्रीय राजनीति के आधार पर ही राज्य राजनीति को विश्लेषित करने का प्रयास किया जाता रहा है। प्रस्तुत शोध के अंतर्गत भारत में राज्य राजनीति का अध्ययन करने के विभिन्न पड़ावों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कुटशब्द: दलीय व्यवस्था, लोकतांत्रिक उत्थान, लामबंदीकरण, चुनावी राजनीति, मत व्यवहार, नेतृत्व, संरेखण, गैर संरेखण, पुनः संरेखण

प्रस्तावना
भारतीय लोकतंत्र विश्व के विभिन्न लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं से भिन्न है तथा इसके अंतर्गत व्याप्त विविधता ही इसे अधिक रुचिकर बनती है। भारतीय राजनीति के विश्लेषण कर्ताओं के लिए इसके अंतर्गत समाहित विभिन्न स्तरीय राजनीतिक प्रक्रिया; राष्ट्रीय, राज्य एवं ग्रामीण राजनीति इसे ओर अधिक आकर्षक बना देती है। राजनीतिक स्तर पर विकेंद्रीकृत व्यवस्था लोकतंत्र की गहनता का प्रतीक होता है भारतीय राजनीति के अंतर्गत यह प्रभाव प्रशासनिक स्तर से लेकर राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर तक अनुभव किया जा सकता है। भारतीय राजनीति के अंतर्गत विकेंद्रीकरण की व्यवस्था का एक अन्य सुंदर पक्ष यह है कि इसके अंतर्गत प्रत्येक इकाई एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर निर्भरता को परिलक्षित करती है। उदाहरण के लिए आरंभिक दशकों में कांग्रेस के राष्ट्रीय स्तरीय वर्चस्व में राज्य राजनीति से संबंधित घटकों का भी उचित योगदान रहा था तथा इसका स्पष्ट प्रभाव कांग्रेस के पतन की प्रक्रिया में भी अवलोकित किया जा सकता है। यह भी भारतीय राजनीति के विश्लेषण कर्ताओं की विडंबना मानी जा सकती है कि आरंभिक दशकों में राष्ट्रीय एवं राज्य राजनीति की परस्पर निर्भरता को एक पृथक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया। उस काल में यह सामान्य अवधारणा निर्मित कर दी गई थी कि राष्ट्रीय राजनीति का प्रभाव राज्य राजनीति पर होता है परन्तु राज्य राजनीति का राष्ट्रीय राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं होता। आरम्भिक स्तर पर राष्ट्रीय स्तरीय चुनावी राजनीति के माध्यम से ही राज्य स्तरीय राजनीति का विश्लेषण कर लिया जाता था, जिसका मुख्य कारण 'कांग्रेस दल' का राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय राजनीति में स्थापित किए गये वर्चस्व को माना जाता रहा परन्तु समय के साथ कांग्रेस व्यवस्था के पतन तथा क्षेत्रीय दलों के आगमन ने राज्य स्तरीय राजनीति की महत्ता को भी स्थापित करने का कार्य आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही शोधकर्ताओं के मध्य चुनावी राजनीति के प्रति बढ़ती रूचि ने भी राज्य राजनीति विषय को अधिक विस्तृत करने का प्रयास किया है। पूर्व में जहाँ सभी की नज़र मात्र राष्ट्रीय स्तरीय चुनावों पर होती थी वह अब राज्य स्तरीय चुनावों पर भी स्थित होना आरम्भ हो गई है। शोध जगत के अंतर्गत इस अकादमिक परिवर्तन को राजनीतिक स्तर पर आए राजनीतिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से उचित प्रकार से आंकलित किया जा सकता है। जहाँ क्षेत्रीय दलों की परिवर्तित भूमिका को गठबंधन की राजनीति के द्वारा अवलोकित किया जा सकता है, क्षेत्रीय दल अब लोकसभा चुनावों के अंतर्गत अपनी विशेष भूमिका निर्वाह करने लगे है, जिसने इसे ओर भी अधिक रोचक बना दिया है। इसके साथ ही गौर करने वाली बात यह है कि यह सभी राज्य एक विभिन्न चुनावी यात्रा को प्रस्तुत करते है। आशुतोष कुमार (2003) का राज्य राजनीति के संदर्भ में मानना है कि भारत के अंतर्गत व्याप्त सभी राज्य क्षेत्रीय एवं सामाजिक स्तर पर एक दूसरे से भिन्न चित्रण प्रस्तुत करते है। यह विभिन्नता ही राज्य राजनीति के अध्ययन को जटिल भी बनाती है। इस विभिन्नता की जटिलता को एक राज्य के अंतर्गत व्याप्त विभिन्नता के आधार पर ही अनुभव किया जा सकता है। वह इसे उत्तर प्रदेश जैसे वृहद राज्य के उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुत करते है कि अगर उत्तर प्रदेश के अंतर्गत क्षेत्रीय एवं सामाजिक विभिन्नता का अध्ययन करना हो, तो हम इसकी प्रशासनिक इकाइयों जैसे - रुहेलखण्ड, पूर्वांचल, बुंदेलखंड, अवध, ऊपरी दोआब एवं निचला दोआब का अध्ययन

करके यह ज्ञात कर सकते है कि उत्तर प्रदेश राज्य के अंतर्गत ही किस स्तर तक विभिन्नता व्याप्त है। अतः राज्यों के मध्य ही इतनी विभिन्नता जब व्याप्त हो तो सभी राज्यों को एक समान मान लेना तथा उन्हें राष्ट्रीय राजनीति से के दृष्टिकोण से आंकलित करना एक भ्रम उत्पन्न कर सकता है। आरंभिक स्तर पर जब राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय चुनाव साथ-साथ होते थे तब यह सामान्य परिकल्पना स्थापित कर दी गई थी कि मतदाता राष्ट्रीय स्तर के चुनाव की भांति ही राज्य स्तरीय चुनावों में अपना मत देता है । राष्ट्रीय स्तरीय विषय ही राज्य स्तरीय राजनीति के मार्ग को प्रशस्त करते है, परन्तु समय के साथ कांग्रेस दल के वर्चस्व में होने वाली कमी ने इस मिथ्या का भी खंडन कर दिया।

राष्ट्रीय राजनीति हो या राज्य राजनीति इन दोनों स्तरों का अध्ययन करने के अनेक कारक हो सकते है जो इस विषय को सरल बनाने से अधिक जटिल बनाने का कार्य कर सकते है। इस जटिलता के समाधान के लिए शोधकर्ता अगर दलीय व्यवस्था का भी उचित प्रकार से अध्ययन करें तो वह सभी पक्षों को समाहित करने का एक प्रयास कर सकता है। जिसका मुख्य कारण हम मान सकते है कि दलों की प्रक्रियात्मक लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनमानस एवं राज्य के मध्यस्थ कर्ता के रूप में भूमिका निर्वाह करना। भारतीय दलीय व्यवस्था में विभिन्न परिवर्तनों के आगमन के कारण राजनीतिक दलों का अध्ययन करना अति आवश्यक हो जाता है। भारतीय दलीय प्रणाली को मुख्यतः एक दल प्रभुत्व प्रणाली से लेकर बहुदलीय प्रणाली तक विश्लेषित किया जा सकता है। जहाँ प्रथम काल के अंतर्गत कांग्रेस के प्रभुत्व में एक दलीय व्यवस्था का केंद्र एवं राज्य स्तर पर प्रभाव अवलोकित किया जा सकता था, वही अन्य ओर क्षेत्रीय दलों के आगमन के पश्चात केंद्र के साथ-साथ राज्य स्तर पर भी गठबंधन की सरकार का निर्माण होना आरम्भ हो गया था। मायनर वेइनर मानते है कि 1967 से पूर्व ही राज्य स्तरीय दलीय प्रणाली ने राष्ट्रीय स्तरीय दलीय प्रणाली से पृथक दिशा आरम्भ कर दी थी। इसका प्रभाव 1990 के दशक में स्पष्ट स्तर पर अवलोकित होने लगा था। इस काल में क्षेत्रीय दल मात्र राज्य राजनीति में ही विशेष भूमिका निर्वाह नहीं कर रहे थे वरन इनके द्वारा केंद्र में भी अपनी पहचान निर्मित करना आरम्भ कर दिया था। 1996 के लोकसभा चुनावों के अंतर्गत सात क्षेत्रीय दलों द्वारा संसद के अंतर्गत 81 सीट प्राप्त की थी। हालांकि योगेन्द्र यादव एवं सुहास पाल्शीकर मानते है कि कांग्रेस व्यवस्था की समाप्ति से निर्मित अवसरों को प्रत्येक राज्य के अंतर्गत समान रूप से अवलोकित नहीं किया जा सकता है। कई राज्यों के अंतर्गत कांग्रेस व्यवस्था में पतन से पूर्व ही परिवर्तन अनुभव होने लगे थे। उद्धरण के लिए कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के अंतर्गत यह परिवर्तन 1983 में हुए राज्य विधानसभाओं के मध्यावधि चुनावों के पश्चात हुआ था, जब कांग्रेस प्रभुत्व वाली राजनीति के पश्चात दो दलीय व्यवस्था का प्रवेश हो गया था। इस ही प्रकार असम के अंतर्गत भी यह परिवर्तन 1985 के पश्चात अवलोकित हुआ, तो वही हरियाणा में कांग्रेस का प्रभुत्व हरियाणा राज्य के निर्माण से ही धूमिल होना आरम्भ हो गया था। जिसे 1987 में पूर्ण रूप से देवीलाल के जाट अस्मिता वाले दल द्वारा समाप्त कर दिया गया। कांग्रेस के प्रभुत्व वाले राज्य जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश एवं दिल्ली को माना जाता था, वह भी 1989 में राष्ट्रीय स्तरीय राजनीति में कांग्रेस व्यवस्था की समाप्ति के पश्चात नए राजनीतिक अवसरों की ओर प्रस्थान करने लगे थे। इस प्रकार यह अवलोकित किया जा सकता है कि कांग्रेस व्यवस्था की समाप्ति के साथ ही राज्य स्तरीय चुनावी राजनीति स्पष्ट स्तर पर राज्य एवं केंद्र में अवलोकित होने लगी थी। हालांकि इसके लिए मात्र कांग्रेस व्यवस्था ही उत्तरदायी नहीं मानी जा सकती है वरन इसके साथ जातिगत एवं क्षेत्रीय अस्मिता को भी मुख्य कारक के रूप में अवलोकित किया जा सकता है।

राज्य राजनीति के अध्ययन का इतिहास

भारतीय राजनीति के अध्ययन में लगभग नब्बे के दशक तक राज्य स्तरीय राजनीति के एक विस्तृत एवं विश्लेषित अध्ययन का अभाव अवलोकित किया जा सकता है। हालाँकि शोधकर्ताओं द्वारा राज्य-राजनीति पर अध्ययन किया जाता रहा परन्तु वह मात्र एक-दो राज्यों के अध्ययन तक ही सीमित होकर रह जाता था। महेंद्र प्रसाद (2017) मानते है कि स्वतंत्रता से पूर्व भी 1909 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत उप ईकाइयों का अध्ययन करना आरम्भ कर दिया गया था, इसके पश्चात 1919 एवं 1935 के भारत सरकार अधिनियम के माध्यम से द्वैध शासन का अध्ययन करने का प्रयास किया गया। यह अधिनियम सीमित स्तर तक ही राज्य राजनीति के अध्ययन की दिशा में कदम माने जा सकते है, वास्तविकता में स्वतंत्रता के पश्चात 1950 एवं 1960 के दशक में भाषागत आधार पर राज्यों के निर्माण की मांगों ने राज्य राजनीति को अध्ययन के केंद्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया था परन्तु इन राज्यों के निर्माण आंदोलन से संबंधित नेताओं द्वारा कांग्रेस दल में विलय होने की प्रक्रिया ने पुनः इस विषय को राष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत समाहित करने का कार्य कर दिया था। 1960 एवं 1970 के दशक में राज्य स्तरीय राजनीति में कांग्रेस के परिवर्तन से ऐसी आशा की जा रही थी कि यह राज्य राजनीति के अध्ययन को मुख्य धारा में स्थापित करने का कार्य करेगा, परन्तु यह अवधि भी कम समय तक ही रही तथा कांग्रेस की राज्य राजनीति के साथ राष्ट्रीय राजनीति में भी पुनः आगमन की प्रक्रिया ने राज्य राजनीति के अध्ययन को एक सशक्त अध्ययन के रूप में स्थापित होने से विमुख कर दिया था। इस प्रकार से यह अवलोकित किया जा सकता है कि भारतीय शोध जगत के अंतर्गत राज्य राजनीति से संबंधित प्रश्नों को विश्लेषित करने में एक लंबी अवधि लग गयी थी। सुधा पाई (1989) अपने लेख के अंतर्गत प्रस्तुत करती है कि भारत के अंतर्गत राज्य राजनीति के अध्ययन की यात्रा को तीन चरणों में विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है –

राज्य राजनीति के अध्ययन का प्रथम चरण

सुधा पाई द्वारा राज्य राजनीति के अध्ययन के प्रथम चरण को 1950-1960 के मध्य के दशक तक चिह्नित किया गया है। यह काल राज्य राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण से उदासीनता का काल था। इस काल में राज्य राजनीति पर होने वाले शोधकार्य की गति राष्ट्रीय राजनीति पर होने वाले शोध कार्य की गति से अपेक्षाकृत कम थी। राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना एवं भाषागत आधार पर राज्य निर्माण की मांग ने शोध को राज्य राजनीति के अध्ययन की ओर परिवर्तित करने का कार्य किया, परन्तु मुख्यतः इन गतिविधियों को भी राष्ट्रीय राजनीति के स्तर पर ही विश्लेषित करने का प्रयास किया जा रहा था। शोध प्रणाली के दृष्टिकोण से इस काल में राज्य राजनीति पर होने वाले कार्य औपचारिक-वैधानिक शोध प्रणाली के माध्यम से संपन्न हो रहे थे। इसके अंतर्गत राज्यों के अंतर्गत मात्र औपचारिक संस्थाओं का ही अध्ययन किया जा रहा था तथा उन सभी परिवर्तनों को पृथक कर दिया गया था जिसका प्रभाव वर्तमान राज्य राजनीति पर भी अवलोकित किया जा सकता है, जैसे- राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों के अंतर्गत उभरते नेतृत्व की प्रक्रिया, कांग्रेस दल में क्षेत्रीय दलों का विलय आदि। इस काल के मुख्य कार्य एस. वी कोगेकर एवं आर. पार्क द्वारा किया गया था तथा इन शोध कर्ताओं द्वारा प्रथम बार राज्य राजनीति को पृथक स्थान प्रदान करने का कार्य किया था।

राज्य राजनीति के अध्ययन का द्वितीय चरण

सुधा पाई के अनुसार 1967 के पश्चात से राज्य राजनीति पर एक व्यवस्थित अध्ययन का आरम्भ हो गया था तथा इसका श्रेय इकबाल नारायण को प्रदान किया जाता है। इस ही काल में मायरन वेइनेर द्वारा संपादित कार्य 'स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया' भी राज्य राजनीति के क्षेत्र में एक मील का पत्थर मानी जा सकती है। इस पुस्तक के अंतर्गत मुख्य रूप से आठ राज्यों; उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, जम्मू एवं कश्मीर, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, आंध्र प्रदेश एवं पंजाब का अध्ययन किया गया था। इस पुस्तक के अंतर्गत मायरन वेइनेर द्वारा राजनीतिक निष्पादन से अधिक राजनीतिक स्थिरता का अध्ययन करने का प्रयास किया गया था। इस ही श्रृंखला में 1976 में इकबाल नारायण द्वारा भारत के 22 राज्यों की राजनीति का अध्ययन करते हुए एक विस्तृत शोध कार्य को प्रस्तुत किया था। सुधा पाई के अनुसार इस द्वितीय चरण की मुख्य विशेषता यह रही थी कि इसने राज्य केन्द्रित अध्ययन की ओर जहाँ शोधकर्ताओं को आकर्षित करना

आरम्भ कर दिया था, वही अन्य ओर राज्य राजनीति को उप-व्यवस्था के रूप में अवलोकित किया जाने लगा था। इन दो विशेष शोध कार्यों के अंतर्गत 1967 के पश्चात के परिवर्तन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया, परन्तु इन सभी चर्चाओं में राज्य की भूमिका एवं विषयों पर विशेष ध्यान न देते हुए राष्ट्रीय राजनीति को ही केंद्र में रखा जा रहा था। उद्धरण के रजनी कोठारी द्वारा 'एक दल प्राधान्यता' (One Party Dominance) एवं इक़बाल नारायण द्वारा 'ध्रुवीकृत बहुलवाद' (Polarized Pluralism) के अंतर्गत 1967 में हो रहे राजनीतिक परिवर्तनों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया, परन्तु इनका मुख्य भी राज्य न होकर राष्ट्रीय राजनीति ही रही थी। इस चरण की एक विशेषता यह भी रही कि, 1960 के दशक तक आते-आते अनुभवजन्य शोध पर आधारित कार्य भी होना आरम्भ हो गये थे। जिसमें मुख्यतः मतदान व्यवहार पर अध्ययन करना शोध का केंद्र हो गया था परन्तु यह अनुभवजन्य शोध का आरम्भिक चरण था। अतः शोध की प्रकृति मुख्यतः राष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत आ रहे परिवर्तनों के दृष्टिकोण से ही की जा रही थी।

राज्य राजनीति के अध्ययन का तृतीय चरण

सुधा पाई मानती है कि राज्य राजनीति के अध्ययन का यह तृतीय चरण इसलिए विशेष रहा था क्योंकि 1970 के पश्चात से राज्यों को एक पृथक 'राजनीतिक अध्ययन की इकाई' का स्थान प्राप्त हो गया था। इस से पूर्व के शोध कार्यों के अंतर्गत राज्यों का अध्ययन राष्ट्रीय राजनीति के बड़े पैमाने के अंतर्गत ही किया जा रहा था, परन्तु अब शोध के अंतर्गत इस विषय पर भी महत्ता प्रदान की गयी कि किस प्रकार से राज्यों के अंतर्गत नेतृत्व, जाति, संघवाद जैसे कारक राज्य राजनीति की दिशा को निर्मित करते है। मुख्य स्तर पर अवलोकन करें तो इस काल में दो स्तर पर दल एवं दल व्यवस्था का अध्ययन किया जा रहा था, प्रथम राज्यों के अंतर्गत कांग्रेस दल की भूमिका एवं अन्य क्षेत्रीय दलों की राज्य राजनीति के अंतर्गत भूमिका का निर्वहन किस प्रकार से हो रहा था। सुधा पाई का मानना है कि राज्य राजनीति का अध्ययन करने के लिए इस काल में कोई प्राधान्य विधि या प्रणाली नहीं थी, जिस का कारण वह उत्तर व्यवहारवाद के आगमन के रूप में वर्णित करती है। जिसने किसी एक विधि या प्रणाली के द्वारा अध्ययन करने की अपेक्षा विभिन्न विधियों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया। वर्तमान समय में राज्य राजनीति को अध्ययन करने हेतु अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया जा सकता है परन्तु राज्य राजनीति की निरंतर परिवर्तित होती गतिशीलता के लिए आवश्यक है कि इस में भी निरंतर सुधार किया जाए।[1]

राज्य राजनीति के अध्ययन का मापदंड

राज्य राजनीति को दो मापदंडों के आधार पर अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम मापदंड के अंतर्गत राज्य राजनीति के शोधकर्ताओं के मध्य बढ़ती रूचि एवं राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तित होती चुनावी व्यवस्थाओं के द्वारा आंकलित किया जा सकता है। दूसरे मापदंड के अनुसार शोधकर्ता भारत के सभी राज्यों की चुनावी राजनीति के आरम्भ काल से वर्तमान तक की यात्रा का विश्लेषण करके कर सकता है। राज्य राजनीति पर अधिकतर हुए कार्यों के अंतर्गत शोधकर्ताओं द्वारा राष्ट्रीय स्तरीय मापदंड के अनुसार ही राज्य राजनीति को अध्ययन करने का प्रयास किया है। राज्यों की संख्या एवं प्रत्येक राज्य की विविधता का अध्ययन करना शोधकर्ताओं के लिए जटिल कार्य बन जाता है, परन्तु वास्तविकता में दोनों मापदंडों के परस्पर प्रयोग के आधार पर ही एक उचित राज्य राजनीति संबंधित शोध कार्य लाया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर के मापदंड को ध्यान में रखकर भारत की राजनीति को विभिन्न चुनावी काल खंडों में अध्ययन किया जा सकता है। हालाँकि चुनावी राजनीति के इस परिवर्तनीय स्वरूप को केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर अनुभव किया जा सकता है। योगेन्द्र यादव (1999) द्वारा भारतीय राजनीति को तीन चुनावी व्यवस्थाओं के द्वारा परिभाषित करने का प्रयास किया है। अपने लेख के अंतर्गत वह चुनावी व्यवस्था शब्द का प्रयोग विभिन्न काल खंड में व्याप्त चुनावी व्यवहार एवं परिणाम का अध्ययन करने के संदर्भ में करते है। जिसके अंतर्गत वह मानते है कि 1952 से 1967 में प्रथम चार लोकसभा चुनाव को प्रथम चुनावी व्यवस्था के द्वारा समझा जा सकता है। यह काल चुनावी दृष्टिकोण से एक दल के प्रभुत्व का काल था, जहाँ कांग्रेस दल की उपस्थिति ने इस काल को गैर-प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया था। हालांकि इस काल में राष्ट्रीय स्तर पर मतदान परिणाम निश्चित अवलोकित किए जा सकते थे, परन्तु विशेष बिंदु यह है कि इस काल में मतदाता एक व्यक्तिगत मतदाता के रूप में नहीं वरन 'जाति' के सदस्य के रूप में अपना मत निश्चित कर रहा था। अर्थात राजनीतिक दल के अपेक्षा अन्य कोई कारक जो मतदान व्यवहार को प्रभावित करता अवलोकित किया जा सकता था, वह मतदाता की जाति ही थी। इस कारक का प्रभाव 1967 के पश्चात अवलोकित होने लगा था, जब मतदाता द्वारा कांग्रेस दल की अपेक्षा जाति के अनुसार मत डालने की प्रक्रिया का आरम्भ कर दिया था। कांग्रेस दल की राज्य स्तरीय चुनावों में कम होते प्रभुत्व एवं क्षेत्रीय दलों के उद्भव के काल को (1969-1988) योगेन्द्र यादव द्वितीय चुनावी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करते है। इस काल के अंतर्गत चुनावी राजनीति के मैदान में अन्य पिछड़ा वर्ग के नए उम्मीदवारों के प्रवेश को अवलोकित किया जा सकता था। 1971 के चुनावों में इंदिरा गाँधी जी की विजय को जहाँ कांग्रेस के प्रभुत्व की पुनः स्थापना के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था, वही योगेन्द्र यादव का मानना था कि यह कांग्रेस की नवीन चुनावी राजनीति में परिवर्तित राजनीतिक भूमिका स्थापित करने का परिणाम था। इस काल में कांग्रेस एक मात्र दल के रूप में स्थापित नहीं थी, वरन अनेक राजनीतिक विकल्पों को भी अवलोकित किया जा सकता था। इसके साथ ही इस काल की विशेषता रही कि विभिन्न राजनीतिक दलों की उपस्थिति के पश्चात भी एक सशक्त विपक्ष के रूप में संयुक्त मोर्चा को स्थापित करने का स्वप्न साकार नहीं हो सका। योगेन्द्र यादव द्वारा 1989 से 1999 के काल को तृतीय चुनावी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ अब क्षेत्रीय दलों की भूमिका मात्र राज्य स्तरीय चुनावी राजनीति तक ही सीमित नहीं थी वरन यह राष्ट्रीय स्तरीय राजनीति में सरकार गठित करने में विशेष भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। जिसका मुख्य कारण वह राजनीति में तीन 'एम'(Three 'M' : Mandal, Mandir and Market) ; मंडल, मंदिर एवं मार्केट के प्रवेश को मानते है। जहाँ मंडल आयोग की सिफारिश के आधार अन्य पिछड़ा वर्ग के आरक्षण का विषय चुनावी राजनीति का विषय उस काल का मुख्य जातिगत प्रश्न बन गया था, वही अन्य ओर भाजपा द्वारा रथ यात्रा के माध्यम से ' राम मंदिर' निर्माण की पहल ने भारतीय राजनीति में हिन्दुत्व की राजनीति को विस्तार करने का कार्य किया था। इसके साथ आर्थिक मंदी से उभरने के लिए 'उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण' को अपनाकर मार्केट व्यवस्था का भारतीय राजनीति में प्रवेश हो गया था तथा यह आर्थिक परिवर्तन चुनावी राजनीति के अंतर्गत भी स्पष्ट अवलोकित किया जा सकता था। इस काल में भाजपा की विभिन्न राज्यों में बढ़ते विस्तार ने भी यह सिद्ध कर दिया था की पूर्व की भांति राज्य राजनीति के स्वरूप एक समान नहीं रहा है वरन इसकी प्रकृति में परिवर्तन को अनुभव किया जा सकता है। योगेन्द्र यादव के अनुसार तृतीय चुनावी व्यवस्था का विशेष तथ्य यह भी था कि इस काल में मतदाता के पास अनेक राजनीतिक विकल्प उपस्थित थे जिसे कांग्रेस के घटते मत प्रतिशत के द्वारा अवलोकित किया जा सकता था। इस से पूर्व की दो चुनावी व्यवस्थाओं के अंतर्गत मतदाता के पास दो ही विकल्प थे कांग्रेस एवं गैर कांग्रेस विपक्षी दल, परन्तु इस काल में मतदाता के पास विपक्ष के अंतर्गत भी अनेक विकल्प प्रस्तुत थे, जिसे योगेन्द्र यादव 'कांग्रेस के पश्चात की राजनीति' (Post Congress Polity) के द्वारा परिभाषित करते है। राज्य राजनीति का अध्ययन करने के लिए अगर प्रत्येक राज्य का अध्ययन आरम्भ किया जाए तो इन्हें भी उत्तर-पश्चिम, पूर्व - दक्षिण राज्यों के अंतर्गत विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है परन्तु यह पुनः सामान्यीकरण करने की स्थिति होगी अगर ऐसा मान लिया जाए कि सभी उत्तरी राज्य (हरियाणा, पंजाब, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश) की राज्य राजनीति दक्षिण के राज्य (केरल, तमिलनाडु एवं कर्नाटक) की राजनीति से पूर्णतः भिन्न एवं समान है। वास्तविकता में उत्तर के राज्य स्वयं में समान होते हुए भी राज्य राजनीति के दृष्टिकोण से भिन्न है। दक्षिण के राज्यों के अंतर्गत भी अवलोकित करें तो केरल में जहाँ कम्युनिस्ट दल का वर्चस्व अधिक है वह वर्चस्व कर्नाटक एवं

[1] गरिमा(2023)पृष्ठ संख्या 3-18।

तमिलनाडु में अनुभव नहीं किया का सकता है। यह स्थिति पूर्वी राज्यों (त्रिपुरा, मिजोरम, असम, मणिपुर आदि) के संदर्भ में विश्लेषित की जा सकती है। यह राज्य जाति, भाषा एवं स्थानीय एवं जनजातियों विषयों के आधार पर जहाँ एक समान प्रस्तुत होते है वही अपनी ऐतिहासिक यात्रा में आए विभिन्न विषयों के आगमन के कारण भिन्न भी हो गए है।

निष्कर्ष

राज्य राजनीति के अध्ययन में क्षेत्रीय दल विशेष भूमिका निर्वाह करते है। उद्धरण के लिए कर्नाटक में जनता दल सेक्युलर, त्रिपुरा में टिप्रा मोर्था पार्टी आदि दल इन राज्यों की राजनीति के अंतर्गत ही उत्पन्न हुए है इस कारण इनका राजनीतिक दायरा भी सीमित ही रहता है। इन दलों के विषय इन राज्यों से ही संबंधित है, अतः यह मात्र राज्य स्तरीय चुनावी राजनीति में ही अपना विशेष योगदान दे पाती है। यह भी ध्यान रखने योग्य बिंदु है कि विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय दलों के उद्भव का कोई समान पैटर्न नहीं अवलोकित किया जा सकता है। यह दल विभिन्न क्षेत्रीय आकांक्षाओं तक ही सीमित होते है। निरंतर होती चुनाव प्रक्रिया में राज्य-राजनीति का अध्ययन करना जटिल कार्य हो सकता है परन्तु शोधकर्ताओं का एक समूह प्रत्येक राज्य में अपनी रूचि अनुरूप अध्ययन करना आरम्भ करें तो एक निरंतर प्रगतिशील राज्य राजनीति का अध्ययन शोध जगत को अर्पित किया जा सकता है।

संदर्भ

1. Choudhary SK. The changing phase of parties and party systems: a study of Israel and India. London: Palgrave Macmillan; 2017.
2. Choudhary SK. India@75: a changing electoral democracy. New Delhi: Aakar Books; 2024.
3. Jones M. Politics mainly Indian. New Delhi: Orient Longman; 1978.
4. Kothari R. The Congress system in India. Asian Survey. 1964;4(12):1161-1173.
5. Kumar A. State electoral politics: looking for the larger picture. Econ Polit Wkly. 2003;38(30):3145-3147.
6. Kumar A. Introduction. In: Rethinking state politics in India: regions within regions. London: Taylor & Francis; 2016.
7. Kumar P. Regionalism and regional parties in the context of state politics. Indian J Polit Sci. 1991;52(4):554-567.
8. Pai S. Towards a theoretical framework for the study of state politics in India: some observations. Indian J Polit Sci. 1989;50(1):94-109.
9. Pai S. Regional parties and the emerging pattern of politics in India. Indian J Polit Sci. 1990;51(3):393-415.
10. Sharma G. Relevance and framework of analysis. In: State politics in India. Delhi: Department of Distance and Continuing Education (School of Open Learning), University of Delhi; 2023. p. 03-18.
11. Sharma G. Electoral politics in state. In: State politics in India. Delhi: Department of Distance and Continuing Education (School of Open Learning), University of Delhi; 2023. p. 95-108.
12. Singh MP. Split in a predominant party: the Indian National Congress in 1969. Delhi: Abhinav; 1981.
13. Singh MP. Introduction. In: Roy H, Singh MP, Chouhan APS, editors. State politics in India. New Delhi: Primus Books; 2017.
14. Vaishnav M, Hintson J. India's fourth party system. Washington (DC): Carnegie Endowment for International Peace; 2019.
15. Yadav Y. Electoral politics in the times of change: India's third electoral system, 1989-1999. Econ Polit Wkly. 1999;34:2393-2399.